इकाई 4 राज्यत्व की समस्याएँ - एकीकरण तथा वैधीकरण

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 अफ्रीका में राज्य की प्रकृति

4.2.1 . राज्य के लक्षण

4.2.2 राज्य के सैद्धान्तिक संदर्भ

4.2.3 विकास-क्रम में राज्य : बदलते सैद्धान्तिक संदर्भ

4.3 राज्य के संकट

4.3.1 राष्ट्रवाद और एकीकरण की समस्याएँ

4.3.2 वैधता का संकट

4.4 . सारांश

4.5 अभ्यास

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम उन बहुत से अफ्रीकी राज्यों के अद्वितीय एवं अपूर्व राज्यत्व अनुभवों तथा विकासात्मक प्रतिपादकों का परीक्षण करेंगे जो बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों में सदाशा की उमंग के साथ स्वाधीन हुए थे। इस प्रक्रिया के विश्व-भर में दूरगामी परिणाम निकले क्योंकि अतीत में कभी इतने कम समय में इतनी बड़ी संख्या में राज्यों को शान्तिपूर्ण ढंग और सद्भावना के साथ स्वाधीनता प्राप्त नहीं हुई थी। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय अफ्रीका में केवल तीन स्वाधीन राष्ट्र थे - इथियोपिया, लाइबेरिया तथा दक्षिण अफ्रीका। आगामी दशकों में यूरोपीयों द्वारा उनके अफ्रीकी साम्राज्यों के परिसमापन हेतु समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किए गए तथा फ्रांस, इंगलैंड एवं बेल्जियम ने तेज़ी से एवं सुविधापूर्वक उन क्षेत्रों और वहाँ के लोगों को मुक्त करने की योजना स्वीकार कर ली जिनके शासन को सँभालने का दायित्व उन्होंने पिछली शताब्दी में सँभाला था। यह प्रक्रिया 1958 में घाना को स्वाधीनता प्रदान किए जाने के साथ प्रारंभ हुई। आगे के वर्षों में इस प्रक्रिया में तेज़ी आई और 1960 से 1964 तक पूर्वी तथा मध्य अफ्रीका के सभी ब्रिटिश उपनिवेशों तथा महाद्वीप में विद्यमान फ्रांसीसी तथा बेल्जियम उपनिवेशों को 1965 तक स्वाधीनता प्रदान कर दी गई और वे सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बन गए। केवल पुर्तगाल-अधिकृत उपनिवेश अंगोला एवं मोज़म्बीक और दक्षिण रोडेशिया एवं दक्षिण अफ्रीका के श्वेतांग निवासियों वाले उपनिवेश रह गए। सन् 1965 तक अफ्रीका उपनिवेशवाद उन्मूलन के मार्ग पर अग्रसर हो चुका था और वहाँ के निवासियों का स्वप्न पूरा हो गया था। किन्तु अफ्रीकी राज्यों को राज्यत्व एवं शासन की संकटपूर्ण एवं कठिन समस्याओं से जूझना पड़ा था। मनचाहे ढंग से परिभाषित उपनिवेशों के स्थान पर राष्ट्र-राज्यों की स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण, सर्वत्र फैली हई गरीबी और सामाजिक-आर्थिक कुंठाओं को दूर करने के लिए सर्वांगीण आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने के साथ-साथ अफ्रीका के अंतर्वर्ती राष्ट्रों सहित विदेशी संपर्कों की व्यवस्था करना आदि समस्याएँ उनके सामने चुनौतियों के रूप में खड़ी थीं।

जिस प्रकार अफ्रीकी राज्य सिद्धान्तों, शासन की प्रकृतियों और प्रकारों, नेतृत्व की शैलियों और विकास की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न थे, उसी प्रकार उनकी समस्याएँ भी भिन्न-भिन्न थीं। उन्हीं समस्याओं

में से कुछ का परीक्षण इस इकाई में किया जाएगा। यहाँ राज्य के संकट से जुड़े हुए कुछ मुद्दों, विशेष रूप से, राष्ट्रवाद, एकीकरण की समस्याओं तथा शासन के वैधीकरण एवं नेतृत्व के विषयों - पर विचार एवं विश्लेषण किया जाएगा। इनका मूल्यांकन, औपनिवेशिक प्रणाली से प्राप्त विरासत - राज्यत्व की राजनीतिक संरचनाओं और कार्यों - के संदर्भ में किया जाएगा। इस उत्तर-औपनिवेशिक विरासत में इस बात का महत्व नहीं होगा कि स्वतंत्र अफ्रीका में इन राज्यों का सामुदायिक यथार्थ तथा उत्तरदायित्व क्या रहा था। वस्तुतः तत्कालीन अफ्रीकी राजनीति को समझने के लिए किया गया कोई भी प्रयत्न इन राज्यों के विशिष्ट ऐतिहासिक अनुभवों की समझ पर ही आधारित हो सकता है। यही संदर्भ आज की अफ्रीकी राजनीति को उपर्युक्त प्रसंग में रख सकता है और समय के साथ विकसित अफ्रीकी समाजों की जटिल विकास पद्धति को स्पष्ट कर सकता है।

स्वाधीनता के बाद की राज्यत्व समस्याओं का विश्लेषण करने से पूर्व यह उपयुक्त होगा कि ऐतिहासिक संदर्भ में अफ्रीकी राज्य की प्रकृति का मूल्यांकन किया जाए।

4.2 अफ्रीका में राज्य की प्रकृति

4.2.1 राज्य के लक्षण

अफ्रीका में राज्य - उत्तर औपनिवेशिक (युगीन) राज्य - में संरचनात्मक तथा कार्यात्मक दृष्टि से वे सभी लक्षण होते थे जो अन्यत्र किसी राज्य में हुआ करते हैं। उसमें स्पष्टतया सीमांकित क्षेत्र, राज्य की सम्प्रभुता और शासन की संस्थागत संरचना जैसे सभी लक्षण थे जो औपनिवेशिक शक्तियों से विरासत के तौर पर मिले थे। कुछ अपवादों को छोड़कर शेष प्रायः सभी नव-स्वाधीन देशों की सरकारों ने सामान्यतः उन्हीं सीमाओं को स्वीकार कर लिया जो औपनिवेशिक राज्यों से उन्हें विरासत में मिली थीं, भले ही वे मनचाहे ढंग से निर्धारित की गई थीं और विभिन्न जातीय एवं सामाजिक वर्गों को विभाजित करती थीं। अपवाद के रूप में परस्पर भिन्नता वाले राज्य अर्थात् सूडान, नाइजीरिया तथा कांगो/ज़ायरे थे जिनमें असंतुष्ट जातीय समुदायों के कारण क्षेत्रीय अखंडता को निरंतर ख़तरा बना रहता था। इन सभी को लंबे गृह युद्धों को झेलना पड़ा था। जहाँ सूडान में 1972-83 तक की अवधि को छोड़कर 1964 के बाद निरंतर गृह युद्ध चलता रहा था, नाइजीरिया से बियॉफ्रा के पृथक् किए जाने के कारण 1967 तथा 1970 के बीच गृह युद्ध की चिनगारी भड़क उठी थी। अफ्रीकी नेताओं ने शीघ्र ही समझ लिया कि उनके तथा उनकी सरकारों के लिए औपनिवेशिक सीमाएँ खतरे के बजाय समर्थन के साधन अधिक थे और उन्होंने उन्हीं सीमाओं का पालन करने का प्रयत्न किया।

केवल चार राज्यों - मोरक्को, सोमालिया, घाना एवं टोगो - ने विरासत में प्राप्त औपनिवेशिक सीमाओं को चुनौतियाँ दी थीं। मोरक्को के सुलतान हसन द्वितीय ने पूर्व औपनिवेशिक मोरक्को राज्य से प्राप्त क्षेत्रों (मॉरिटेनियन तथा अल्ज़ीरियन) पर अपना दावा पेश किया था। सोमालिया ने जिबूटी, इथियोपिया तथा घाना में बँटे हुए सोमाली जाति द्वारा गृहीत क्षेत्रों की आत्म-निर्णय की माँग का समर्थन किया था। घाना ने सभी औपनिवेशिक सीमाओं को चुनौती देते हुए उन्हें समाप्त करने और पूरे महाद्वीप में एक ही अफ्रीकी महासंघ बनाने की माँग की थी। टोगो ने 1919 में इंगलैंड और फ्रांस के बीच बाँटे गए पूर्ववर्ती जर्मन उपनिवेश की स्थिति के पुनर्स्थापन का अभियान छेड़ा था और 'एव' नामक विभाजित जातीय समुदाय को एकत्र करने का प्रयत्न किया था। जहाँ घाना तथा टोगो ने अपने-अपने दावों को छोड़ दिया, वहीं मोरक्को और सोमालिया ने औपनिवेशिक विभाजन के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा। मध्य अफ्रीका में रवाण्डा एवं बुरुण्डी तथा दक्षिणी अफ्रीका में लैसोथो एवं स्वाज़ीलैण्ड जैसे अन्य राज्यों

ने औपनिवेशिक सीमांओं के संशोधन संबंधी अपने दावों को छोड़ दिया और अपने अधिक शक्तिशाली पड़ोसियों को चुनौती न देने में ही समझदारी मानी। एक और उदाहरण में, दक्षिण अफ्रीका में जिन स्वाज़ी लोगों का स्वाज़ीलैण्ड में स्थानान्तरण किया जा रहा था उन्होंने स्वाज़ियों के दक्षिण अफ्रीकी निवास क्षेत्र के स्वाज़ीलैण्ड में प्रभावित स्थानान्तरण को विरोध के कारण त्याग दिया। उसी प्रकार, एम्हैरिक ईसाइयों तथा अरबी-भाषी नील घाटी के मुसलमानों एवं ख़रतूमों द्वारा किए गए अलगाववादी गंभीर दावों के बावजूद इथियोपिया तथा सूडान, दोनों ने विरासत में मिली अपनी सीमाओं को ज्यों का त्यों रखा।

कुल मिलाकर, व्यावहारिक सुविधा तथा पारस्परिक मान्यता के आधार पर सीमाओं से छेड़छाड़ न करने की आवश्यकता को समझा गया। ऐरिट्रिया ही ऐसा एकमात्र अपवाद रहा जिसने स्वाधीन राज्यत्व की माँग की और अंततः उसमें सफलता भी प्राप्त की।

सम्प्रभुता, किसी राज्य की दूसरी प्रमुख विशेषता है। इसका मूल उपर्युक्त प्रथम लक्षण में ही होता है। उपनिवेशवादोत्तर सभी अफ्रीकी राज्यों को सम्प्रभुता प्रदान की गई थी। इन राज्यों की सरकारें अपने सम्प्रभुता-अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करती थीं और अपने सीमा क्षेत्रों में सभी कार्यों में स्वयं ही विवादक (मध्यस्थ) होती थीं। इसके अतिरिक्त बहुत से राज्यों ने राष्ट्रीय नेतृत्व के माध्यम से स्वाधीनता प्राप्त की जिन्हें अपने-अपने राज्य-क्षेत्र में जन-समर्थन प्राप्त था, जो अंततः सम्प्रभुता में विकसित हो गया। उन परिस्थितियों में भी जब किसी राज्य में आन्तरिक संघर्ष की स्थिति होती थी, पड़ोसी राज्य उसकी सम्प्रभुता का सम्मान करते हुए किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते थे। उदाहरण के लिए, इथियोपिया के सम्राट हेले सेलेसी को भी, जो अपनी शक्ति को देव-प्रदत्त मानता था और असमानता तथा कलह पर आधारित सत्ता-संरचना का नियंत्रक था, सम्प्रभुता का संकट कभी नहीं रहा था। इसी प्रकार लाइबेरिया में यद्यपि सरकार पर अमेरिकी-लाइबेरियाई आप्रवासियों का नियंत्रण था (जिन्होंने स्थानीय अफ्रीकी बहुमत को उनके वैध अधिकारों से वंचित कर रखा था) फिर भी वहाँ के पड़ोसी अफ्रीकी राज्यों के लिए यह किसी प्रकार की चिंता का विषय नहीं बन सका। अन्य राज्यों - नाइजीरिया, कैमरून, घाना, माली, गिनी आदि - ने राज्य की सम्प्रभुता के नाम पर आन्तरिक संघर्ष में हस्तक्षेप नहीं किया।

अफ्रीकी राज्य की तीसरी विशेषता शासन की संस्थागत संरचना है जो कार्यपालिका, विधानमंडल तथा न्यायपालिका द्वारा प्रचालित होती है। इन संस्थाओं के माध्यम से अफ्रीकी राज्य अपने-अपने राज्य-क्षेत्र में सम्प्रभुता-जन्य अधिकारों का प्रयोग करते थे तथा नौकरशाही, सशस्त्र सैन्य बल एवं पुलिस की सहायता से कानून एवं व्यवस्था तथा जन-कल्याण के अन्य अनिवार्य कार्यों का परिचालन करते थे। अतः राज्य के पास अपनी सीमा में सम्प्रभुता-जन्य संवैधानिक अधिकार का पूरा तंत्र तथा स्वतंत्र रूप से और प्रभावी ढंग से शासन करने के लिए उसका सहायक संरचना तंत्र होता था। फिर भी अफ्रीकी राज्यों की यथार्थ स्थिति उनके प्रतिस्थानी यूरोपीय राज्यों से बहुत भिन्न थी और वे प्रायः अपने मूल कार्यों को अंजाम देने में असफल रहते थे। इस असंगति का कारण क्या था? अफ्रीकी राज्य संतोषजनक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से अपने दायित्व को निभाने में असफल क्यों रहे? अफ्रीका में राज्य के विकास के ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक संदर्भों के आधार पर इनमें से कुछ मुद्दों पर हम विचार करेंगे।

4.2.2 राज्य के सैद्धान्तिक संदर्भ

यद्यपि अफ्रीकी राज्य की प्रकृति पर बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है किन्तु यह विषय अब भी बहुत पेचीदा बना हुआ है क्योंकि अफ्रीका में राज्य की कोई एक सुस्पष्ट परिभाषा या अवधारणा नहीं है। अफ्रीका में जितने देश हैं उतने ही प्रकार के राज्य हैं जिनमें सिद्धान्त (समाजवाद या पूँजीवाद), आर्थिक

विकास, नेतृत्व-शैली, सत्तासीन शासन की प्रकृति, जनसंख्या आदि के आधार पर भिन्नता होती है। इसके साथ-साथ उत्तर-औपनिवेशिक अफ्रीका में राज्यत्व एक आरोपित धारणा थी न कि शासकों की विकासात्मक ऐतिहासिक प्रक्रिया। अफ्रीकी राज्य से अफ्रीकी सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ को वैसा सुदृढ़ आधार प्राप्त नहीं हुआ जैसा आधुनिक यूरोपीय राज्य से वहाँ के समाज को प्राप्त हुआ था। इसका सर्जन वस्तुतः उपनिवेशवाद से हुआ था। अतः इसमें विभिन्न आन्तरिक संरचनाएँ थीं जो साम्राज्यवादी शक्तियों के अपने-अपने उपनिवेशों के संदर्भ में लागू विविध नियंत्रण प्रणालियों के अनुरूप थीं। उदाहरण के लिए, पुर्तगाल द्वारा उपनिवेश उन्मूलन की मनाही, स्थानीय (देशी) संस्थाओं के विकास में बेल्जियम की असफलता, दक्षिणी अफ्रीका में गोरे लोगों की बस्ती का अधिरोपण, अप्रत्यक्ष शासन की ब्रिटिश प्रणालियाँ तथा फ्रांस द्वारा अपने उपनिवेशों के साथ निभाए गए विशिष्ट सांस्कृतिक संबंध आदि को देखा जा सकता है। पुर्तगाल, इटली तथा स्पेन की सरकारों की प्रकृति को देखते हुए यह अपेक्षा करना कम संभव था कि उनके औपनिवेशिक प्रशासन अधिक प्रभावशाली होते। तथ्य यह है कि पुर्तगाली उपनिवेशों की पिछड़ी हुई, अक्षम तथा स्वेच्छाचारी शासन प्रणालियाँ शासक देश के आंतरिक शासन को ही प्रतिबिंबित करती थीं। दूसरी ओर, फ्रांस और इंगलैंड ने अपने अफ्रीकी उपनिवेशों में अपेक्षाकृत अच्छी औपनिवेशिक प्रथाओं का निर्वाह किया जिससे उपनिवेशों को सरकारों की गुणवत्ता का लाभ प्राप्त हुआ। उस समय उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों को विरासत में प्राप्त राजनीतिक प्रणालियाँ इतने विविध प्रकारों की थीं कि अफ्रीका में राज्य की प्रकृति और उसके मूल को परिभाषित करना कठिन हो जाता है।

फिर भी, अफ्रीका की समीक्षा ने राज्य की प्रकृति, उसकी उत्पत्ति और विकास के तीन अलग-अलग, किंतु मिलते-जुलते, कार्यात्मक उपागमों के माध्यम से व्याख्या की है। ये हैं - उदार विकासात्मक उपागम, मार्क्सवादी उपागम; तथा उपनिवेशवाद से वंचित अतिविकसित राज्य। उदार-विकासात्मक अवधारणा ने राज्य की व्याख्या राजनीतिक व्यवस्था के शिखर पर सरकार के पर्याय के रूप में की। मार्क्सवादी व्याख्या के अनुसार राज्य एक राजनीतिक संरचना थी जिस पर आर्थिक रूप से वर्चस्वशील (शक्तिशाली) वर्ग का नियंत्रण था - यह उस वर्ग-संघर्ष का परिणाम था जोकि समाज में उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के विकास से निर्धारित होता था। अतः राज्य की परिकल्पना पूँजीवादी व्यवस्था में वर्ग संघर्ष के संदर्भ में देश की स्थिति से निर्धारित होती है। तीसरी परिकल्पना राज्य को अतिविकसित (overdeveloped) रूप में प्रस्तुत करती है। यह औपनिवेशिक राज्य की विरासत है, जिसकी शक्तियाँ अपनी सीमा में और संसाधनों पर असीमित थीं। राज्य की शक्ति जिनके पास है वे समाज के सशक्त और विशेषाधिकार-प्राप्त अभिजनवर्ग के सदस्य होते हैं। इस अवधारणा का विकास प्रथम दो परिकल्पनाओं के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। यही एक मात्र उपागम है जोकि इतिहास द्वारा समर्थित है, क्योंकि यह विश्वास करता है कि जिस रूप में राज्य का इस इकाई में विश्लेषण किया गया है, उसकी पृष्ठभूमि में औपनिवेशिक राज्य रहा है। ये सभी अवधारणाएँ पाश्चात्य अनुभव पर आधारित हैं, परन्तु वे अफ्रीका के संदर्भ में सभी प्रकार से अपर्याप्त सिद्ध हुई हैं।

4.2.3 विकास-क्रम में राज्य : बदलते सैद्धान्तिक संदर्भ

पिछले कुछ दशकों में राज्य तथा राजनीतिक एवं सामाजिक-आर्थिक यथार्थों के साथ राज्य के कार्य में निरंतर होते हुए परिवर्तनों के विकास ने तीन अवधारणाओं की उपयोगिता और उनकी सीमाओं को उजागर किया है। अफ्रीकी राज्यों ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के अति उत्साह में विरासत में मिली राजनीतिक संरचना को बिना किसी संकोच के स्वीकार कर लिया था। किन्तु जैसे ही खुशफहमी समाप्त हुई और कठिनाइयाँ सामने आईं, अधिकतर अफ्रीकी नेताओं ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा अपनी ऐसी

प्रशासनिक प्रणालियों को विकसित कर लिया जो यूरोपीय राज्य संरचना के पश्चिमी उदारवादी नमूनों से भिन्न थीं। इनका बोध आगे अफ्रीकी राज्य की प्रकृति को पूरी तरह समझने तथा उसे अफ्रीकी एवं यूरोपीय ऐतिहासिक संदर्भों में उपयुक्त स्थान पर रखने में सहायक होगा।

अफ्रीकी राज्य का सबसे प्रमुख लक्षण यह था कि उसमें औपनिवेशिक राज्य की संरचना और उसके कार्यों के अनुकरण करने की चेष्टा की गई थी। उसमें औपनिवेशिक राज्य की संपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक एवं प्रशासिक संरचना को ज्यों का त्यों लिया गया था जिसमें अपेक्षा से अधिक लोगों के अधिकारी–तंत्र (नौकरशाही) के कारण उसकी स्थिति अति-विकसित जैसी थी। नौकरशाही तंत्र ही वह साधन था जिसके सहारे, जीते हुए क्षेत्र पर औपनिवेशिक राज्य अपनी साम्राज्यवादी सम्प्रभुता स्थापित करता था तथा अपने सैन्य बल एवं उत्पीड़न के आधार पर अपने अधिकार को वैधता प्रदान करता था। और इस अधिकार में राज्य के नागरिक समाज के प्रति ऐसा कोई दायित्व नहीं जुड़ा होता था जैसा आधुनिक यूरोपीय राज्य के साथ जुड़ा होता है। औपनिवेशिक राज्य की तरह ही अफ्रीकी राज्य भी अपने नौकरशाही तंत्र तथा सशक्त अवसंरचना का उपयोग अपनी नीतियों को लागू कराने तथा नियंत्रण को केन्द्रीकृत करने के लिए करते थे। अफ्रीकी नौकरशाही ने वर्षों से भारी शक्ति अर्जित कर ली थी तथा अपने आदेश का कठोरता से पालन कराया था। साथ ही राज्य अत्यंत निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी हो गया था। औपनिवेशिक राज्य की भाँति ही अफ्रीकी राज्य भी प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था को हर ओर से नियंत्रित एवं निदेशित करता था। लोगों को सुख-सुविधाएँ प्रदान करके या उन्हें रोककर तथा अन्य लोगों से उनके मिलने-जुलने को रोक कर उसने सामाजिक जीवन को भी मनचाही दिशा दी। राज्य ने अपने संसाधनों के बड़े भाग का उपयोग करके अपने नियंत्रण को और भी बढ़ा लिया। यह उपयोग कर्मचारियों के वेतन-भुगतान के रूप में, व्यक्तिगत रूप से निदेशित निवेशों में या ऐसी ही शंकास्पद गतिविधियों के लिए किया गया। राज्य के नीति-आयोजक सिद्धान्त के रूप में, इस अधिकारपूर्ण एवं केन्द्रीकृत प्रवृत्ति ने पूरे महाद्वीप में किसी एक दलीय राज्य या प्रभावी दलीय राज्य की झोंक के स्थान पर सिद्धान्त के प्रति समर्पित राज्य, यहाँ तक कि विश्व-अर्थव्यवस्था को वरीयता देने वाले राज्य को बढ़ावा दिया।

अफ्रीकी राज्यों के एक अन्य वर्ग, विशेषकर मार्क्सवादी राज्यों - अंगोला, मोज़म्बीक, इथियोपिया तथा गिनी बिसाउ - ने उन सिद्धान्तों का समर्थन किया। दो उग्र समाजवादी राज्यों - तंज़ानिया एवं सेकाउ टूर्स गिनी ने केन्द्रीकरण की एक और राजनीतिक दिशा बनाई। दोनों ने ऐसे प्रतिरूप अपनाए जिनमें राज्य के दलीय अनुशासन की आवश्यकता पर जोर दिया गया और सैद्धान्तिक अपीलों तथा औद्योगिक, वाणिज्यिक, कृषि एवं सहकारी संगठनों पर सार्वजनिक स्वामित्व के माध्यम से राज्य का आर्थिक नियंत्रण लागू करके जनतंत्रीय केन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया गया। उदाहरण के लिए गिनी में सत्ताधारी दल *'पार्टी डेमोक्रेटिक डी गिनी'* (*Parti Democratique de Guinee – PDG*) ने राष्ट्रीयकरण एवं आत्म-निर्भरता का अपना समरूप (homogenous) कार्यक्रम विकसित किया जिसमें अपनी मुद्रा का प्रचलन, बुद्धिजीवी आभिजात्य वर्ग के लिए कांकण तथा कोनाक्री के अपने ही पॉलिटेक्निकों में प्रशिक्षण कार्यक्रम, तथा बड़े पैमाने पर मानव-निवेश कार्यक्रम जैसी योजनाएँ शामिल थीं। इन योजनाओं को इस तरह तैयार किया गया था कि उनके द्वारा राज्य की केन्द्रवादी प्रवृत्तियों के शासन के पक्ष में लोगों को सहमत कराया जा सके। इस शासन ने पड़ोसी देशों से अपना अंतर स्पष्ट करने के लिए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर जोर दिया जिसमें पूर्वजों के इतिहास को अफ्रीका के गौरवमय अतीत से जोड़कर गाया जाता था तथा पूरे महाद्वीप के लिए उग्र सर्व-अफ्रीकावाद का रूपान्तरण भी किया गया। सन् 1968 में एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयोजन किया गया जिसमें इन दो विचार पद्धतियों की

अन्योन्याश्रितता स्पष्ट की गई और उसके आधार पर शासन की नीतियों को व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। अत्यंत शान-शौकत के साथ, फोटा जेलॉन प्रमुख तथा औपनिवेशिक प्रतिरोध के पूर्व नायक, अल्फ़ा याया, के सम्मान में एक भव्य अभिनंदन समारोह आयोजित किया गया। राज्य की राजनीतिक नीतियाँ तथा उसकी विकासोन्मुख कार्यनीतियाँ वस्तुतः कुछ ऐसे कारक थे जिन्होंने राज्य पर से पूर्ववर्ती महानगरों की आर्थिक जकड़न को तोड़ा था। किन्तु अपनी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों द्वारा पी.डी.जी. ने वर्षों से हर गाँव के लोगों, आस-पास के सभी कारखानों और कार्यालयों पर अपना नियंत्रण सुदृढ़ कर लिया था। इन सभी में दल की समितियाँ गठित हो चुकी थीं।

तंज़ानिया में, शासन की औपनिवेशिक प्रणाली से आए हुए नौकरशाही केन्द्रवाद का विकास दो परस्पर भिन्न मार्गों में हुआ जिससे देश की राजनीतिक संरचना को निर्णय लेने की अपूर्व हैसियत तथा आभिजात्य वर्ग को नौकरशाही तंत्र पर प्रभुत्व जमाने की क्षमता प्राप्त हुई। स्वाधीनता प्राप्ति के एक दशक के भीतर ही सरकारी अभिकरणों तथा सरकार द्वारा प्रायोजित परस्तातलों (Parastatals) का अनुमानतः मध्यम तथा बृहत् आर्थिक गतिविधियों के 80 प्रतिशत तथा वित्तीय जी.डी.पी. के 44 प्रतिशत पर लेखा-जोखा संबंधी नियंत्रण हो गया था। कालान्तर में उज़मा समाजवाद के माध्यम से किए गए विकेन्द्रीकरण के उन प्रयत्नों द्वारा भी, जिनमें स्थानीय स्तर से जिला परिषदों तक निर्णय लेने और उन्हें कार्य रूप में परिणत करने की पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान की गई थी, वस्तुतः परिधि पर केन्द्रीय नौकरशाही के प्रभाव को बढ़ाया गया था। अन्य राज्यों - मलावी, ज़ायरे, युगाण्डा, इथियोपिया एवं अंगोला - ने भी शासन के लिए इसी प्रकार की केन्द्रवादी नौकरशाही को लागू किया था। इथियोपिया अफ्रीका का पहला साम्यवादी देश था जिसने मेंजिस्तु हेले मरियम के नेतृत्व में साम्यवादी दल के केन्द्रीकृत प्रतिरूप का गठन विकसित किया था। उसने पृथकतावादी शक्तियों को किसी भी प्रकार की रियायत देने से मना कर दिया और प्रशासन तंत्र पर दल के नियंत्रण को और भी कस दिया। इस प्रकार अंगोला में राष्ट्रपति ऐड्वार्डो डॉस सैन्टोस ने नौकरशाही सहित राज्य की केन्द्रीय संस्थाओं के द्वारा प्रभावी नियंत्रण लागू किया था। इस नीति ने सरकार को स्थिरता प्रदान की और राज्य के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के समाधान भी प्रस्तुत किए।

अफ्रीकी राज्य प्रणाली की दूसरी विशेषता उसकी पैतृक प्रकृति है, अर्थात् यह प्रणाली संरक्षक-ग्राहक संबंधों पर आधारित है जिसे विश्लेषकों ने "प्रिबेण्डल पॉलिटिक्स" (prebendal politics) (भत्तों आदि पर आधारित राजनीति) कहा है। अफ्रीकी राज्यों ने ऐसी शासन प्रणाली की खोज का प्रयत्न किया जो उन्हें अपने सामाजिक संगठनों तथा राज क्षेत्रों पर अधिकार प्रदान कर सके और ऐसा करते हुए उन्होंने सत्तावादी (निरंकुश), केन्द्रीकृत, पैतृक, प्रशासनिक संरचना का विकास किया जिसमें घोर स्थिरतावादी औपनिवेशिक प्रशासनिक परम्पराओं का मुक्त रूप से प्रभाव ग्रहण किया जा सके और आश्रित स्तर की औपनिवेशिक विरासतों से संघर्ष किया जा सके। राष्ट्र के बाहर के निगमों के प्रभुत्व वाली विश्व की पूँजीवादी प्रणाली के साथ दृढ़ संबंध तथा विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि व्यापक विविधतायुक्त अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के व्यापक प्रभाव ऐसी विरासतों में प्रमुख हैं। अफ्रीकी पैतृक प्रणाली का मुख्य तत्व व्यक्तिगत एवं केन्द्रीकृत कार्यकारी प्राधिकरण है जिसकी स्थिति एवं शक्ति को पैतृक एवं कानूनी तौर पर युक्तिसंगत मतों एवं विश्वासों से वैध बनाया गया है। इस प्रणाली में राज्य की कार्यपालिका को संरक्षक-ग्राहक तंत्र में समर्पित एवं व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान अधिकारियों का समर्थन प्राप्त होता है। ये अधिकारी और उनके समर्थक समुदायों का जाल राज्य के प्रशासनिक उपकरण पर नियंत्रण रखता था जो आगे चलकर उन्नति, हैसियत, शक्ति एवं वैभव का प्रशस्त मार्ग बन गया।

स्वाधीनता के बाद की राजनीति में पैतृक राज्य का उदय, विकास का दूसरा चरण था तब शासनकर्त्ता दल कमजोर पड़ गए और (आभिजात्यवर्गीय) अफ्रीकी नेता अपने ग्राहक (समर्थक) तंत्रों सहित शक्ति सम्पन्न होकर अन्य लक्ष्यों की तलाश में जुट गए, भले ही उनके लिए उन्हें राज्य के हित भी दाँव पर लगाने पड़ें। इस बीच वे स्वयं समृद्ध हो गए। पूरे महाद्वीप में शीघ्र ही ऐसे नेता मानक बन गए। अन्य राज्यों के बीच ज़ायरे, कीनिया तथा नाइजीरिया पैतृक केन्द्रीकृत प्रशासनिक प्रणालियों के ऐसे विशिष्ट उदाहरण हैं जो कमजोर रहे और उनका राजनीतिक रूप से शीघ्र ही पतन हो गया। राजनीतिक भागीदारी पर आधारित परम्परागत समर्थन का विकास, बहुराष्ट्रों, स्थानीय दलालों (बिचौलियों) तथा राज्य के सूत्रधारों के बीच में एक त्रिकोणीय संबंध हो गया। भ्रष्टाचार व्यापक हो गया और कुछ ही वर्षों में उसने अपना दायरा एक प्रथा के रूप में इतना विस्तृत कर लिया कि उसमें सरकार तथा सरकारी अधिकारी, सभी लिप्त हो गए। पैतृक राज्य में यह एक विशिष्ट प्रकार्य-लक्षण हो गया। एक भूमिगत (प्रच्छन्न) अर्थव्यवस्था ने जिसमें ज़ख़ीरेबाजी, तस्करी तथा वैयक्तिक संबंध प्रमुख हो गए, शीघ्र ही खुले बाजार की अधिक व्यवस्थित प्रणाली का स्थान ले लिया। ज़ायरे, युगाण्डा, तंज़ानिया, गिनी एवं सियरा लोने जैसे देशों में भी अनुमानतः एक-तिहाई से दो-तिहाई तक आर्थिक गतिविधियाँ अवैध हो रही थीं। व्यक्तिगत रूप से सैकड़ों अफ्रीकी नेताओं ने अपने गरीब देशों को उनके अल्प-संसाधनों तथा राजस्वों से वंचित रखा था। उदाहरण के लिए विश्वास किया जाता है कि मोबुतु और उसके परिवार के लोगों ने अपने देश को ठगकर अरबों डॉलर की सार्वजनिक राशि यूरोपीय बैंकों में जमा कर रखी थी। इसी प्रकार कहा जाता है कि इथियोपिया के हेले सेलासी ने अपने देश के स्वर्ण भंडारों को विदेशों में बेचकर देश को अरबों डॉलर का चूना लगाया था और उमर बोंगो तथा उसके विश्वस्त साथियों ने महाद्वीप के तेल तथा खनिज सम्पन्न देश - गेबॉन - को उसकी संपत्ति से वंचित किया था। स्वाभाविक है कि ये सभी घटनाएँ महाद्वीप के लिए दुखद थीं क्योंकि इनके कारण ही आज अफ्रीका विश्व-अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा के हाशिए पर पहुँच गया है।

अफ्रीकी राज्य की तीसरी प्रमुख विशेषता नागरिक समाज से इसके संबंध को लेकर है। यह ऐसा संबंध हैं जिसने राज्य को उपेक्षा भी प्रदान की है और प्रधानता भी। इस संबंध को ठीक से समझने के लिए यह उचित होगा कि दो अवधारणाओं का परीक्षण ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाए। यूरोप तथा संसार के अन्य भागों में राज्य का विकास लोगों की सामाजिकता संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रमशः हुआ था किन्तु अफ्रीका में इससे भिन्न, यह एक भौड़े कूबड़ की भाँति समाज के भीतर और बाहर उभर आया था जिसने समाज के कार्यात्मक उपकरणों में वृद्धि करके लोगों तथा उनकी गतिविधियों को नियंत्रित करने की चेष्टा की थी। औपनिवेशिक राज्य स्वयं भी औपनिवेशिक विजय के परिणामस्वरूप बने थे अतः 'अफ्रीका की लूट-खसोट' के दौर में उन्हें (औपनिवेशिक शासकों को) यह अनिवार्य लगा कि अपने कब्जे को प्रभावी, वैध एवं औचित्यपूर्ण सिद्ध करने के लिए स्वयं ही प्रतिरूप का निर्धारण भी करें। कालान्तर में 19वीं शताब्दी में राज्य ने प्रधान रूप से समाज पर विविध सहयोगियों (प्रमुखों, धर्म-प्रचारकों, व्यापारियों आदि) की सहायता से नियंत्रण रखने के लिए तंत्र के ढाँचों का निर्माण किया। द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रभुत्व तथा समादेश संबंध का एक निश्चित ढाँचा उपलब्ध हुआ था और वही ढाँचा राष्ट्रवादी उत्तराधिकारियों को प्राप्त हुआ। अतः अफ्रीका के उत्तर-औपनिवेशिक राज्य तथा उसके नागरिक समाज के संबंध वैसे ही बने रहे जैसे पहले थे। यद्यपि उत्तर-औपनिवेशिक राज्य की एकता संबंधी अपनी राष्ट्रवादी अनिवार्यताएँ थीं, फिर भी उसने अपने आपको विरासत में मिली औपनिवेशिक कार्यात्मक संरचना को गर्त में पड़ा रखा जिसके द्वारा पूर्ववर्ती युग में समाज को प्रधान रूप से अप्रतिबंधित प्रभुत्व के साथ नियंत्रित रखा जाता था। इस प्रकार अधिकतर शासकों ने विभिन्न विरोधी सामाजिक वर्गों को एक ही आन्दोलन में सम्मिलित करने या अप्रत्यक्ष रूप

से उन पर नियंत्रण रखकर उन्हें राज्य के प्रभुत्व में लाने का प्रयत्न किया था। ऐसे संबंध का उपयुक्त उदाहरण है - सेनेगल। सेनेगल ने सीधे अथवा प्रत्यक्ष रूप से कार्य किया और शहरी एवं ग्रामीण जनसंख्या पर राजनीतिक नियंत्रण रखने के लिए संपूर्ण प्रशासनिक एवं राजनीतिक सत्तावादी साधनों का प्रयोग किया।

यही समय था जब अफ्रीका में नागरिक समाज की अवधारणा का उदय हुआ क्योंकि लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगे थे। उस जागरूकता को एक प्रतिक्रिया के तौर पर लाने में राज्य की लगातार चलती हुई प्रभुत्ववादी प्रकृति तथा उसकी सर्वशक्तिमता ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। ठीक यही प्रभाव, कालान्तर में, राज्य तथा समाज के बीच पैदा हुई आर्थिक विकृति तथा शासकों और जनता के बीच बढ़ती हुई असमानताओं का पड़ा। इसी समय संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों (Structural Adjustment Programmes – SAPs) के शासन की शर्तों ने नागरिक समाज को इस योग्य बना दिया कि वह उत्पादन को राज्य के अधिकार से दूर करके उसे उन विशेषाधिकारों से वंचित कर सके जिनका उपभोग एकाधिकार के कारण अब तक राज्य किया करता रहा था। परिणामस्वरूप, लगभग सर्वत्र राज्य की वैधता और शक्ति में पर्याप्त कमी आ गई। ज़ायरे इसका उदाहरण है, जिसे निजी क्षेत्र के नागरिक समाज के हाथों राजस्व की बड़ी राशियाँ खोनी पड़ी थीं। परिणाम यह हुआ कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक विरोध हुआ और संघीय तंत्रों की संरचना के माध्यम से राष्ट्रवादी आत्म-दृढ़ता पैदा हुई जो विविध प्रकार की सामाजिक लामबंदियों और प्रदर्शनों में अभिव्यक्त हुई। नागरिक समाज को राज्य में पर्याप्त प्रमुखता प्राप्त होने लगी जबकि केन्द्रीकृत एवं अति-विस्तृत राज्य कमजोर पड़ने लगा। अफ्रीका में राज्य की इस विशेषता के परिणामों को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के आधार पर महाद्वीप के बहुलतावाद एवं लोकतंत्रीकरण में संक्रमण को समझा जा सकता है।

4.3 राज्य के संकट

4.3.1 राष्ट्रवाद और एकीकरण की समस्याएँ

इस संदर्भ में यह कहना है कि स्वाधीनता मिले बहुत समय नहीं हुआ था कि स्वाधीन अफ्रीकी राज्यों को राष्ट्रवाद के संकट से जूझना पड़ा। राज्यों की सरकारों को मनचाहे ढंग से परिभाषित उपनिवेशों से उठे मुद्दों को तो सँभालना ही था; उन्हें सर्वतोमुखी आर्थिक विकास को भी सुनिश्चित करना था ताकि जनता में व्याप्त गरीबी और कुंठा का इलाज किया जा सके। इस संकट का मुख्य कारण यह था कि औपनिवेशिक युग के बाद गठित अफ्रीकी राज्य 'नैसर्गिक' राष्ट्र-राज्य काफी कठिनाई से ही कहे जा सकते थे। इनकी भौगोलिक, सीमाओं का निर्धारण करते समय इस बात तक का ध्यान नहीं रखा गया था कि एक ही जातीय समुदाय के लोग विभिन्न राज्यों के शासन में बँट रहे थे। पूर्ववर्ती उपनिवेशों की भाँति ही ये राज्य भी भौगोलिक, जातीय, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से समरूपी एवं संबद्ध नहीं थे। वे असमरूपी वर्गों के 'सम्मिश्रण' तथा 'असंबद्ध पैबंदकारी' जैसे थे जिनमें राष्ट्रत्व की विशेषता मुश्किल से ही दिखाई पड़ती थी। जहाँ यूरोपोय, एशियाई एवं लैटिन अमेरिका देशों में कुछ ऐसी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक, जातीय एवं भाषायी सामान्य आधारशिलाएँ थीं जिनसे राष्ट्रीयता विकसित हो सकती थी वहीं अफ्रीका में ऐतिहासिक प्रक्रिया ही उलट दी गई थी। उत्तर-औपनिवेशिक राष्ट्रीयता का प्रारंभ औपनिवेशिक परिसर से ही हुआ था और उसकी नींव में औपनिवेशिक महाद्वीप ही था। साथ ही, यद्यपि राष्ट्र-राज्य में स्वतंत्रता तथा सम्प्रभुता एक महत्वपूर्ण लक्षण है किन्तु जब उपनिवेशवादी चले गए तो उसकी सुविधापूर्वक उपेक्षा कर दी गई। ऐसा इसलिए किया गया कि अफ्रीका में स्वाधीनता का समय उनके लिए राजनीतिक दृष्टि से उत्कृष्ट

रूप में उपयुक्त था। इसमें राष्ट्रवादियों की राजनीतिक अनिवार्यताओं के स्थान पर औपनिवेशिक महानगरीय तथा अफ्रीकी राजनीति प्रतिबिंबित हुई थी। राष्ट्रवादियों को यदि समय दिया गया होता तो वे अपनी धरती से जुड़ी हुई पौराणिकता के आधार पर राष्ट्रवादी राज्य का विकास करते। उपनिवेशवादियों ने न तो कभी पूर्व औपनिवेशिक अफ्रीका के यथार्थों को ध्यान में रखा था और न इस पर विचार किया था कि चंद समुदाय साथ-साथ रह भी पाएँगे या नहीं। उनके मन में उन लोगों के प्रति भी किसी प्रकार की दायित्व भावना नहीं थी जिन्होंने इन उपनिवेशों का प्रशासन चलाया था या उनमें प्रबंध सँभाला था। उस समय स्थायित्व बनाए रखना ही एकमात्र उद्देश्य माना गया था। दूसरी ओर, स्वाधीनता प्राप्ति के समय और उसके तुरंत बाद राष्ट्रवादियों की एकता तथा संबद्धता का एकमात्र कारक उनका अफ्रीकी चरित्र था जिसमें एक विशिष्ट जातीय वर्ग तो पहचान के रूप में था किन्तु संबद्धता या एकता के लिए अपेक्षित किसी अन्य स्पष्ट तत्व का अभाव था। स्वाधीनता प्राप्ति के समय केवल लेसोथी, स्वाज़ीलैण्ड तथा केप वर्डे ही ऐसे देश थे जिनकी औपनिवेशिक सीमाएँ ऐतिहासिक तर्क से संगत कही जा सकती थीं क्योंकि उनके द्वारा उन उपनिवेशों के निवासियों की समरूपी पहचान झलकती थी। अन्य सभी राज्य जातीय, प्रजातीय या क्षेत्रीय प्रवृत्तियों में से किसी न किसी के (कृत्रिम) विभाजन के शिकार हुए थे। इसके अतिरिक्त इन राज्यों में नागरिकों के एकीकरण की समस्याएँ भी थीं। ये समस्याएँ राज्य-समाज की संरचनात्मक विकृतियों, भौगोलिक एवं प्राकृतिक दबावों तथा बाद में राज्य के अधिकारियों की अनुचित कार्रवाइयों जैसी औपनिवेशिक विरासतों की देन थीं। अफ्रीकी राज्य की मूल प्रवृत्ति ही संकटों के लिए सुभेद्य लगती थी। अपने उत्तर-औपनिवेशिक अस्तित्व के प्रारंभिक दौर में ही अफ्रीकी राज्य को बहुत-सी संकटपूर्ण स्थितियों में निर्वाह करना पड़ा था जिनमें से कुछ तो नई समस्याओं के उभरने तक बनी रहीं थीं। उन्होंने न केवल अफ्रीकी राज्यों में राष्ट्रवाद के सामने वरन् सम्प्रभुता के सामने भी संकट उपस्थित किया था। इस संदर्भ में अफ्रीकी राज्यों ने राष्ट्रवाद और राष्ट्र-निर्माण की अपनी ही अवधारणाओं को विकसित करने का दायित्व लिया जिससे वे स्वयं ही व्यवहार्य राजनीतिक इकाइयाँ बन सकें। यह कार्य कठिन था क्योंकि शिक्षित, पश्चिमी सोच वाले राष्ट्रवादी आभिजात्यजन सामान्यतः महानगरीय (यूरोपीय) राजधानियों में प्रशिक्षित थे और यूरोपीय प्रतिरूपों के अनुरूप ही राष्ट्र संबंधी धारणा रखते थे। इसके अतिरिक्त, अफ्रीकी राज्यों के सामने अनेक बाधाएँ थीं जो हर राज्य में अलग-अलग प्रकार की थीं और जिनके कारण राष्ट्र-राज्य बनाने के राष्ट्रवादियों के प्रयत्नों को भारी चुनौती का सामना करना पड़ा था। फिर भी यह जानना रोचक है कि अनेक सच्चे (निष्कपट) नेताओं ने महाद्वीप के गौरवमय ऐतिहासिक अतीत के आधार पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थन तथा प्रतिपादन किया जिसने वहाँ के लोगों को आकर्षित किया। उदाहरण के लिए गिनी ने संगत सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समर्थन किया जिसने विशुद्ध रूप से उपनिवेशवाद के विरुद्ध अफ्रीकी प्रतिरोध के अतीत से विरासत ग्रहण की और संपूर्ण महाद्वीप में उभरते हुए अफ्रीकावाद की अपनी धारणा से उसे समन्वित किया।

राज्य की पहली बड़ी चुनौती उसकी प्रकृति में ही निहित है क्योंकि वह औपनिवेशिक राज्य की विरासत थी और इसकी व्यवस्था गिने-चुने राष्ट्रवादी आभिजात्यों के हाथों में थी जो शक्ति को अपने काबू में रखने के निहित स्वार्थ के कारण पूर्ववर्ती महानगरीय राज्य से सूत्रों को जोड़े हुए थे। राज्य में जातीय अनुरूपता का अभाव था और आर्थिक असमानताएँ थीं। स्पष्ट राजनीतिक-आर्थिक संरचनाजन्य विकृतियों से ग्रस्त राज्य जो विशाल बहुमत की कीमत पर चंद गिने-चुने लोगों के हितों की ही रक्षा करता था, अफ्रीकी वातावरण में पूर्णतः असंगत सिद्ध हुआ। ऐसे राज्य का विरोध कोई असामान्य बात नहीं थी। अनेक असंतुष्ट जनसमुदाय राष्ट्र-राज्य परियोजना से अलग हो गए। यह ठीक है कि लोगों के इन समुदायों ने स्वाधीनता और राष्ट्रवाद का विरोध किया था किन्तु वे उन 'नव

राष्ट्रवादियों' की वैधता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे जिन्हें जाते हुए उपनिवेशवादियों ने राजनीतिक लबादा ओढ़ने के लिए चुन लिया था और जिन्होंने स्वाधीनता हेतु हुए चुनावों को जीत लिया था। बहुत से अफ्रीकी प्रमुखों तथा राजनीतिक रूप से शक्तिशाली एवं प्रभावशाली धार्मिक नेताओं ने (जो पहले औपनिवेशिक राज्य को सहयोग प्रदान करते रहे थे) इन उत्तर-औपनिवेशिक शासकों के अधिकारों पर गहन असंतोष एवं विरोध प्रकट किया। उनका चुनौतीपूर्ण विरोध तब तीव्रतर हो जाता था जब शासक और शासित दो भिन्न जातीय संप्रदायों के लोग होते थे। उदाहरण के लिए, घाना में आकार और समृद्धि की दृष्टि से सबसे बड़े जातीय समुदाय एशान्तियों (Ashantis) को नक्रूमा के शासक दल कन्वेंशन पीपल्स पार्टी (सी.पी.पी.) की सरकार के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। कालान्तर में जब सी.पी.पी. ने प्रमुखों की उपेक्षा कर दी और उन्हें अपनी विशेष आर्थिक सुविधाओं के छिन जाने की आशंका हुई तो वे सरकार के विरुद्ध एकजुट हो गए। सत्ताधारी दल के द्वारा दमित किए जाने पर इन एशान्तियों ने अपनी शत्रुता को और भी सुदृढ़ किया और उन्होंने प्रभावी विपक्ष के रूप में स्वयं को सुगठित कर लिया जिसने राज्य के अधिक्रमण का प्रतिरोध किया। सेनेगल में, मुस्लिम ब्रदरहुड के शक्तिशाली प्रमुखों 'मरबूतों' को जिन्होंने पहले सक्रिय रूप से औपनिवेशिक शासन को सहयोग दिया था और जो अपने अनुयायियों पर भारी प्रभाव तथा शक्ति रखते थे, सत्ताधारी शासन ने 'सहयोगियों' की श्रेणी में सूचीबद्ध किया था जिससे सरकार के काम में अड़ंगा डालने की उनकी क्षमता पर रोक लग सके। किन्तु गिनी में परिदृश्य भिन्न हो गया था। फौटा जालोन के शक्तिशाली प्रमुखों को सरकार के विरुद्ध लामबंद होने पर कुचल दिया गया था।

प्रजातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं क्षेत्रीय भिन्नताओं के साथ-साथ जातीय वैमनस्य ने राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकता के सामने अन्य बड़ी चुनौतियाँ प्रस्तुत की थीं। तंज़ानिया को छोड़कर, जहाँ नेशनलिस्ट पार्टी विभिन्न जातीय समुदायों का प्रामाणिक गठबंधन (या सहमिलन) था, अन्य बहुसंख्यक स्वाधीन राज्यों को इस (वैमनस्य) के घातक आघात को झेलना ही पड़ता था। गिनी में कौला, घाना में एशान्ति, नाइजीरिया में इबो, टोगो में एब, कैमरून में बैमिलके आदि की ओर से चुनौतियाँ उठती ही रहीं। कैमरून में केवल गृहयुद्ध से ही स्वाधीनता प्राप्त हो सकी। युगाण्डा में देश के सबसे शक्तिशाली जातीय समुदाय बागंडा ने, जो औपनिवेशिक शासन का समर्थक रहा था, ऐसी सरकार का विरोध किया जिसमें उनका वर्चस्व न हो। बिना उनके समर्थन के कोई भी प्रभावी लोकतांत्रिक राष्ट्रीय सरकार टिक ही नहीं सकती थी। सातवें दशक में नाइजीरिया में नए राज्य के लिए तीन प्रबल जातीय वर्गों में प्रतियोगिता थी - पहले, संख्या बल में अधिक किन्तु आर्थिक रूप से कमजोर मुस्लिम हौसा फुलानी का राजनीतिक सरंचना पर प्रभाव था; दूसरा, आर्थिक रूप से समृद्ध क्रिश्चियन इबोस पश्चिम में तथा तीसरा योरूबास पूर्व में था। इनके बीच अनेक वर्षों के संघर्ष, गृहयुद्ध और बाद में परिसंघ बनाए जाने के बाद भी, नाइजीरिया को आज तक राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक एकीकरण की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। क्षेत्रीय मतभेदों के कारण उद्भूत इसी प्रकार की समस्याएँ अन्य देशों में भी सामने आई हैं जिनके कारण नए राज्यों और उनकी सरकारों की वैधता की स्वीकृति कठिन हुई है। मॉरिटेनिया तथा सूडान में दक्षिणवासियों की, सेनेगल में मंडिंकाओं की, अंगोला में किंबुंडुओं की, कैड में उत्तरवासियों की, मोज़म्बीक में माकुआ क़ी, कीनिया में सोमालियों की राष्ट्रवादी एकीकरण के प्रति ऐसी ही अनास्था सर्वविदित है।

लम्बे समय तक विद्यमान इन असंतुष्ट गुटों का राजनीतिक दबाव बहुत बढ़ गया और स्वाधीन सरकारों पर इन्हें राजनीतिक संरचना में शामिल कर अनुकूल बनाने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह गया था, भले ही उनकी सारी माँगें नहीं मानी जा सकीं। युगाण्डा में बागंडा तथा सेनेगल में मरबूतों

मांराबूटों का औपनिवेशिक काल से ही पर्याप्त राजनीतिक प्रभाव था अतः उन्हें राज्य के तंत्र में सहयोजित न करना कठिन था किन्तु जब भी ऐसा किया गया, भारी मूल्य चुकाना पड़ा।

अफ्रीका के राजनीतिक विकास के बाद के दौर में जो संकट उभरा और जिसने राज्य की एकता (अखंडता) के प्रयत्न को चुनौती दी, वह था राज्य तथा नागरिक समाज के बीच फूट पड़ने वाले संघर्ष। यह जानना रोचक होगा कि अफ्रीका में 'नागरिक समाज' की अवधारणा का विश्लेषणपरक पद के रूप में प्रयोग केवल 1980 के दशक में प्रारंभ हुआ था जबकि राज्य-समाज की संरचनात्मक विकृतियों के कारण होने वाले संघर्ष औपनिवेशिक युग से ही चले आ रहे थे। ये राजनीतिक एवं आर्थिक विकृतियाँ नीति-निर्माण की सत्तावादी एंवं केन्द्रीकृत प्रक्रिया से जन्म लेती थीं जिसके कारण आर्थिक विकास सहित स्थानीय समुदाय, राज्य के सभी मामलों में भाग लेने से वंचित रह जाते थे। एक शताब्दी से भी अधिक समय तक चले औपनिवेशिक युग को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि इन राज्यों के प्रजाजन राज्य के प्रभुत्व से घिरे रहे थे जबकि आर्थिक रूप से उनकी हैसियत केवल मज़दूरी की इकाइयों (मज़दूरों) जैसी ही थी जिनका उपयोग राज्य द्वारा अतिरिक्त दोहन के लिए किया जाता था। औपनिवेशिक युग में समाज राज्य का अधीनस्थ था।

औपनिवेशिक युग के अंतिम वर्षों में नियंत्रण और प्रभुत्व की प्रक्रिया में थोड़ी ढील दी गई। राजनीतिक परिषदों ने अग्रदूत की तरह नागरिक समाज को जन्म दिया जिसे राज्य का महत्वपूर्ण अवयव माना गया। किन्तु इन परिषदों में से ज्यादातर राष्ट्रवादी नेतृत्व की प्रबल सामाजिक परियोजनाओं, कुप्रबंधन तथा औपनिवेशिक राज्य की शक्ति के कारण निष्क्रिय हो गई थीं। इसी प्रकार के प्रयत्न योडेमाकालीन टोगो, टॉम्बल्वेकालीन कैड तथा मोबुतुकालीन ज़ायरे के शासकों द्वारा भी किए गए थे।

विश्व-अर्थव्यवस्था में अफ्रीका के एकीकरण ने समस्या को और भी उलझा दिया। विकास के उच्चतर स्तर को प्राप्त करने की अभिलाषा के कारण अफ्रीकियों का बड़ा बहुमत, बेहतर जीवन स्तरों तथा समुन्नत आर्थिक स्तरों से वंचित हो गया। औपनिवेशिक युग में प्रारंभ हुए इस क्षरण का परिणाम यह हुआ कि अफ्रीकी उत्पाद और प्रकारान्तर से अफ्रीकी अर्थव्यवस्था, विदेशी बाज़ारों के आश्रित हो गई और आर्थिक निर्णय लेने की शक्ति अफ्रीकी राज्यों के हाथों में नहीं रही। इसका परिणाम यह हुआ कि नागरिक समाज जो तब तक औपनिवेशिक शासनों के वर्चस्व से दबा हुआ था, उत्तर-औपनिवेशिक अफ्रीका में और भी हाशिए पर पहुँचा गया और राज्य-समाज की विकृतियों के कारण परिदृश्य और भी बिगड़ गया।

4.3.2 वैधता का संकट

विकसित होते हुए अफ्रीकी राज्यों को अपनी वैधता की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा था। उनकी नीतियों में सिद्धान्त और व्यवहार का अंतर था; राज्य की नीतियों को जनकल्याणोन्मुख होना चाहिए था जबकि वे अभिजातवादी एवं विशिष्ट वर्गोन्मुखी थीं। अतः राज्य ने उन मूल अपेक्षाओं को आघात पहुँचाया था जिसके अनुसार उसे समाज में कृषि, उद्योग, शिक्षा और कल्याण से संबंधित सभी विकासात्मक प्रयत्नों का मूल प्रस्तावक होना था। उसके स्थान पर राज्य और औपनिवेशिक सरकारों ने जहाँ छोड़ा था वहीं से प्रारंभ करने वाली उत्तर-औपनिवेशिक सरकारों ने अधिक से अधिक शक्ति अर्जित की और वे कुछ व्यक्तियों एवं वर्गों के हित-साधन के लिए प्रधान एवं पैतृक रूप धारण कर बैठीं।

1960 के दशक में अफ्रीकी राज्यत्व के प्रारंभ होने के समय से ही, उसकी वैधता को भिन्न-भिन्न कालों में अनेक चुनौतियाँ मिलती रही हैं और राज्य के तंत्र उन्हीं के अनुरूप अपना समायोजन करते रहे हैं। पूर्ववर्ती औपनिवेशिक राज्य से विरासत में प्राप्त राष्ट्रवादी शासनों के स्वाधीनतोत्तर प्रथम दौर में ऐसी चुनौतियाँ मामूली थीं और सामान्यतः सरलता से हल भी हो जाया करती थीं। इन शासनों को कमोबेश संपूर्ण अधिकार प्राप्त थे क्योंकि उनकी वैधता उनके राष्ट्रवादी प्रत्ययों से व्युत्पन्न थी जिसे स्वाधीनता के लिए हुए चुनावों में मिली उनकी सफलता तथा खुशफ़हमी ने आशा तथा विश्वास के परिदृश्य में ढाल रखा था। यदि कोई विरोध करता था तो उसे तंत्र में शामिल/एकीकृत करके नियंत्रित कर लिया जाता था। उदाहरण के लिए सेनेगल और कोट ड आइवरी में जब राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय एकता को ख़तरा उत्पन्न हुआ तो विरोधियों को प्रायः समझा-बुझाकर और राज्य-संस्थाओं में पद प्रदान करके शान्त किया गया। किन्तु घाना या गिनी जैसे अन्य उदाहरणों में, जहाँ वर्षों के अंतराल में वैधता कम होती गई और विरोध बढ़ता गया, उसे बल प्रयोग द्वारा शान्त करना पड़ा।

निर्विरोध राजनीतिक वैधता का यह दौर नवजात अफ्रीकी राज्यों में अल्पजीवी ही रहा। कुछ ही वर्षों में पूरा महाद्वीप राजनीतिक हलचलों से हिल उठा जिसके कारण अनेक परिवर्तन करने पड़े। गिनी, घाना, युगाण्डा, कांगो, तंज़ानिया, माली आदि में 'वामपंथी' राजनीतिक अभिविन्यास की लहर चली। उसी समय मध्य अफ्रीकी गणतंत्र, कांगो (ब्राज़ाविले), कांगो (ज़ायरे), दहोमी, घाना, मैलागेसी, माली, नाइजीरिया, सियरा लोने, सोमाली गणतंत्र, युगाण्डा और बुर्किना फ़ासो (तत्कालीन अपर वोल्टा) आदि अनेक अफ्रीकी राज्यों में 17 बार सैनिक विद्रोह-जन्य सत्ता-पलट हुए। कई राज्यों में तो एक से अधिक बार ऐसे सत्ता पलट हुए।

तीसरे स्तर पर वैधता को इसलिए चुनौतियाँ मिलीं कि सत्तासीन शासकों ने राज्य की शक्ति को, शासन की एकात्मिका पद्धति के द्वारा, एकाधिकृत और केन्द्रीकृत कर डाला जिसके कारण कुछ केन्द्रीय व्यक्तियों को राजनीतिक एवं आर्थिक वरीयता प्राप्त हुई जबकि बहुसंख्यक ग्रामीण जनता सामान्य जीवनोपयोगी सुविधाओं से भी वंचित रही। यह ऐसा दौर था जबकि राज्य में संरक्षक ग्राहक संबंधों के व्यापक जालों द्वारा पैतृक/आनुष्ठानिक लक्षणों का विकास किया जा चुका था और जिसमें तंत्र से जुड़े हुए लोगों को राजनीतिक आकाओं द्वारा पैतृक उपहारों के माध्यम से लाभ पहुँचाया जाता था। ऐसे राज्यों ने शीघ्र ही अत्यधिक शक्ति एवं अधिकारों को अर्जित कर लिया। सत्ताधारी आभिजात्यों ने समाज के सभी दावों एवं आशाओं के प्रतिकूल राज्य को भीतर और बाहर, दोनों ओर से लूटना प्रारंभ कर दिया। राजनीतिक मोर्चे पर इन शासनों ने, शक्तिशाली नौकरशाही और प्रशासन सहित, राज्य के सभी संस्थागत संरचनात्मक ढाँचों पर नियंत्रण बनाए रखा। कालान्तर में इन्हीं के माध्यम से उन्होंने राज्य के अवसंरचनात्मक ढाँचे पर वर्चस्व स्थापित किया और अपनी आवश्यकता एवं लाभ के अनुरूप उसका उपयोग किया। अतः अफ्रीकी राज्य अत्यधिक राजनीति-रंजित हो गया और सहयोग, ख्याति तथा सहमति के माध्यम से उसकी संरक्षण शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। साथ ही, इस पद्धति में अनेक देशों में भ्रष्टाचार आम बात हो गई। सौदे होने लगे और सार्वजनिक निधियों के ग़बन के मामले सामने आने लगे जिससे राज्य की गतिविधियों पर से लोगों का विश्वास डगमगाने लगा। इसी समय, खनिजों के निर्यात के कारण राज्य के राजस्व में हुई नाटकीय वृद्धि का लाभ उठाकर, राजनीतिज्ञों तथा अन्य सत्ताधारी आभिजात्यों ने अरबों डॉलर अपने निजी खातों में जमा कराने में कोई संकोच नहीं किया।

शीघ्र ही, धनाढ्य बनने की अपार संभावनाएँ खुल गईं और असंख्य मार्ग मिल गए। नाइजीरिया, गेबोन और अंगोला में तेल की खोज तथा उसके निर्यात के कारण मानो आँधी के आम टपक पड़े किन्तु

उससे प्राप्त राजस्व का बड़ा भाग, पर्दे के पीछे, सत्ताधारी आभिजात्यों की जेबों में पहुँच गया। बुर्किना फ़ासो, माली, नाइजर, सोमालिया जैसे अत्यंत सीमित संसाधन वाले गरीब देशों में भी सत्ताधारी आभिजात्य वर्ग ने सरकारी धन का गरीबों के हित में उपयोग करने के स्थान पर अपनी जेबें भरने के लिए बिना किसी संकोच के किया। प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए द्विपक्षीय अभिकरणों तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों - जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund - IMF), पुनर्निर्माण तथा विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Restructuring and Development - IBRD) एवं विकास हेतु सहायक अन्य अभिकरणों द्वारा हस्तान्तरित तथा राज्य-अभिकरणों की सरणि से वितरित राशियाँ भी कभी सच्चे अर्थों में उन कामों के लिए खर्च नहीं की गईं जिनके लिए वे भेजी गई थीं। विकास के ऐसे घुमावदार जटिल ढाँचों के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बहुसंख्यक किसानों के स्थान पर कुछ विशिष्ट जनों का ही उपकार हुआ अतः उन (सामान्यजन एवं विशिष्टों) के बीच की आर्थिक खाई चौड़ी ही होती गई। चूँकि गरीब आर्थिक रूप से वंचित था इसलिए राज्य ने उन्हीं वर्गों के संचय को सहारा दिया जिनकी पहुँच राज्य की संस्थाओं तक थी। अनुत्पादक उद्यमों में निवेश के बहुत से उदाहरण हैं - गिनी बसाउ में राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के लिए पुर्जों को जोड़कर कार तैयार करने का कारखाना लगाया गया तथा तंज़ानिया में राज्य के समाजवादी सिद्धान्त के अनुरूप एक कृषि-औद्योगिक परस्तातल लगाया गया। अन्य राज्यों में कृषि-औद्योगिक उद्यम मध्यस्थों की राजनीति के विस्तार के रूप में लगाए गए थे जैसा सेकाउ तूरे के समय में गिनी में या नक्रूमा-कालीन घाना में किया गया। ये सभी परियोजनाएँ कुछ लोगों की राजनीतिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश्य से थीं न कि क्षेत्र के लिए किसी प्रकार के उत्पादक साहसिक प्रयत्न के रूप में। कुल मिलाकर राज्य के सारे विकास कार्य शहरों या औद्योगिक परियोजनाओं की पक्षधरता पर आधारित थे जबकि ग्रामीण क्षेत्र पूर्णतः उपेक्षित रहा था। इन हालात को देखते हुए राज्य क़ा विरोध कोई अनहोनी बात नहीं थी।

ज्यों-ज्यों जन-अपेक्षाओं तथा सरकारी कार्रवाइयों में अंतराल बढ़ता गया, शासन तथा वैधता का संकट भी बढ़ा। इसके कारण राज्य और समाज के सूत्र विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर हुए। परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में शासनादेश कमज़ोर हुआ और राज्य की वैधता में कमी आई। जनता जो अब राज्य को अन्य देशीय संस्था के रूप में देखने लगी थी, अपने वैध अधिकारों और सुविधाओं को सुरक्षित करने के लिए दबाव बढ़ाने लगी और इस प्रकार राज्य तथा समाज के पारस्परिक संबंध धराशायी हो गए।

किन्तु अधिकार को वास्तविक चुनौती और शासन एवं वैधता के लिए संकट, समसामयिक प्रकृति की एक अपेक्षाकृत अभिनव घटना है। अफ्रीकी सरकारों की राजनीतिक रंगत जो भी हो, समाज की राजनीतिक और विशेषकर आर्थिक शिकायतों के संचय से उदित असंतोष, राजनीतिक उत्तरदायित्व के संकट के केन्द्र में होता है और वही उनकी वैधता को प्रभावित करता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो सन् 1975 से बहुसंख्यक अफ्रीकी अर्थव्यवस्थाएँ धीरे-धीरे नीचे की ओर जाने लगी थीं। जैसे-जैसे सत्ताधारियों ने राज्यों के क्षीण संसाधनों का गलत इस्तेमाल जारी रखा, विकास को धक्का लगता चला गया और राज्य आर्थिक गतिहीनता, शक्तिक्षय एवं विखंडन के शिकार होते गए। सन् 1973 के तेल-संकट ने आर्थिक अवनति को और भी बढ़ावा दिया जिससे बहुत से अफ्रीकी राज्य आज तक नहीं उबर पाए हैं। उत्पादक क्षेत्र के बड़े भाग उपेक्षित रह गए जबकि मुट्ठी-भर आभिजात्य लाभ उठाते रहे। अतः उत्पादक क्षेत्रों में निराशा, कुंठा तथा सत्ताधारी शासन एवं (संबद्ध) संस्थाओं के प्रति अविश्वास ने घर जमा लिया। कालान्तर में आए ऋण-संकट ने अफ्रीकी अर्थव्यवस्थाओं को और भी कमजोर किया तथा राज्य की आर्थिक संरचना एवं राजनीतिक शासकों द्वारा जनता को संतुष्ट कर पाने की असमर्थता को रेखांकित किया।

राज्य की आन्तरिक गतिहीनता तथा विखंडन में वृद्धि हुई। अपनी शक्ति और सम्प्रभुता को बनाए रखने के लिए संघर्षरत पहले से ही कमज़ोर राज्य को अन्य चुनौतियों से भी जूझना पड़ा। इन चुनौतियों में शक्ति और एकता के लिए आन्तरिक रूप से तथा विश्व की पूँजीवादी पद्धति पर बाह्य रूप से निर्भरता की अनिश्चितता प्रमुख थीं। 1980 के दशक तक कमज़ोर अफ्रीकी राज्यों ने विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं संरचनात्मक समायोजन व्यवस्था के व्यापक प्रभाव के सामने समर्पण कर दिया जिसके फलस्वरूप उन्हें विश्व की पूँजीवादी व्यवस्था के घेरे में जाना पड़ा।

संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (SAP) की प्रणाली ने अफ्रीकी आर्थिक प्रबंध की समस्याओं को उदार बाजारोन्मुख दृष्टिकोण से देखा जो बहुलतावाद का समर्थन करता था और निजी उद्यम को बढ़ाता था। सन् 1993 तक सभी उप-सहाराई अफ्रीकी राज्यों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिए। किन्तु राज्यों के बजटों को संतुलित करने के लिए सरकारी खर्च में की जाने वाली कटौती के रूप में लगाई गई शर्तों, विशेषकर खाद्य सामग्री के मूल्य निर्धारण, खाद्य सामग्री के समर्थन मूल्य और स्वास्थ्य-रक्षा संबंधी आर्थिक सहायता को बंद करने जैसे उपायों का इन देशों के गरीबों पर बुरा प्रभाव पड़ा। खाद्यान्न के समर्थन मूल्य को बंद करने तथा शहरों की आवश्यकता पूर्ति हेतु खाद्य सामग्री पर लगाए गए अन्य नियंत्रणों का खाद्य उत्पादन पर अहितकर प्रभाव पड़ा तथा नकदी की फसलें उगाने के लोभ में लोगों ने खाद्य फसलें उगाना कम कर दिया। परिणामतः खाद्यान्न की कीमतें आसमान छूने लगीं और ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को आयातित खाद्यान्न पर निर्भर होना पड़ा जिसे खरीदना उनके घरेलू बजट में संभव नहीं हो पाता था। स्वास्थ्य-रक्षा और शिक्षा जैसे कल्याणकारी मदों में दी जाने वाली आर्थिक सहायता को बंद करने से गरीबों की समस्या और भी भयावह हो गई। कुछ मिलाकर, संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम से शहरी आभिजात्य वर्ग (जो अब भी राज्य के मामलों पर नियंत्रण कर रहा था) तथा समाज के उपेक्षित निम्न मध्य वर्ग के बीच आर्थिक असमानताओं में और भी वृद्धि हुई।

भेदभावपूर्ण विकास के औपनिवेशिक ढाँचे के कारण अफ्रीका में नागरिक समाज प्रायः अल्प-विकसित रहा था। अब राज्य-समाज आर्थिक विकृतियों ने दशा को और भी बिगाड़ दिया। उसी समय संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों की शर्तों का पालन करने के परिणामस्वरूप पैतृक ढाँचे के चरमरा जाने से तंत्र के पूर्ववर्ती ग्राहकों (समर्थकों) को भी मताधिकार से वंचित हो जाना पड़ा। अतः वे नागरिक समाज में सम्मिलित हो गए और उन्होंने भी औरों के साथ राज्य के अधिकार को चुनौती दी। नागरिक समाज उस समय तक अपने अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के प्रति सजग हो चुके थे, अतः उन्होंने निर्णयकारी निकाय में प्रतिनिधित्व की माँग की। इस प्रकरण के कारण शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक तनाव की स्थिति बन गई जो प्रदर्शनों और विरोधों के रूप में फूट पड़ी और उनके माध्यम से राज्य के अधिकार और उसकी वैधता को चुनौती दी जा रही थी।

अन्य राज्यों में से ज़ाम्बिया तथा कीनिया दो ऐसे राज्य हैं जहाँ राजनीतिक परिवर्तन के लिए लोकप्रिय भावना 1980 और 1990 के दशकों में जाग्रत हुई थी। दोनों ही राज्यों में उनकी शहरी जनसंख्या और ग्रामीण जनसंख्या के लिए अत्यंत स्पष्ट रूप से विकास के भिन्न-भिन्न प्रकार के ढाँचे में और प्रत्येक राज्य में दोनों वर्गों में आर्थिक रूप से अत्यंत असमानताएँ थीं। दोनों ही देशों में सक्रिय नागरिक समाज की उपस्थिति ने तथा इस तथ्य ने भी यह संभव बनाया कि राज्य अधिकार को चुनौती दी जाए कि पूरा महाद्वीप राजनीतिक उदारीकरण की ओर बढ़ रहा था जिसमें ग्राहक राज्य से महाशक्ति के समर्थन की वापसी भी शामिल थी। ज़ाम्बिया में मज़दूर संघों ने जन-सामान्य की आर्थिक दुर्दशा को सत्ताधारी शासनों की असफलताओं से जोड़ा और राज्य के अधिकार को चुनौती देने तथा राजनीतिक परिवर्तन

की आवश्यकता पर जोर देने के लिए जनता के विविध वर्गों को एकजुट किया। 1980 के दशक में प्रशासन के विकेन्द्रीकरण संबंधी सुधारों पर, जिनके कारण खान मज़दूरों को प्रदान की जाने वाली कल्याणकारी सेवाएँ हल्की हुई जा रही थीं, राज्य तथा ताँबा-पट्टी के (खान) मज़दूर संघों के बीच आमना-सामना हो गया। सन् 1990 में जब मक्का के भोजन का मूल्य दुगुना कर दिया गया तो प्रदर्शन अपने चरम पर आ गए। इसी प्रकार कीनिया में 1982 में जो विरोध प्रारंभ हुआ उसमें सत्ताधारी शासन की विकास नीतियों को चुनौती दी गई थी। सन 1990 में उन्होंने बहुलतावाद तथा लोगों की कल्याण योजनाओं में सुधार की माँग की।

अन्य देशों में भी इसी प्रकार के विद्रोह हुए जिनके कारण राज्य शासनों को चुनौती मिली। अतः अफ्रीकी नेतृत्व की समझ में अपनी जनता को प्रतिनिधित्व देने की बात आ गई क्योंकि उन्हें प्रतिनिधित्व प्रदान किए बिना (शासन को) वैधता प्राप्त नहीं हो सकती थी। व्यापक सामाजिक दावेदारी तथा निर्णयकारी अभिकरणों में समाज की भागीदारी की इच्छा नेतृत्व के सामने दूसरी चुनौती थी।

इसी समय, आर्थिक शर्तों के लागू होने तथा बाहरी नियंत्रण के संपर्क में आने के बाद दो दशकों से संपूर्ण एवं निर्विवाद राजनीतिक सम्प्रभुता को भोगने वाले अफ्रीकी राज्य को अपने अधिकार को मिलने वाली आंतरिक तथा बाह्य चुनौतियों से जूझना पड़ा। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, आन्तरिक (घरेलू) चुनौतियाँ व्यापक एवं दिशाहीन थीं जिन्होंने शक्ति में भागीदारी तथा शासन में बाह्य रूपान्तरण की माँग की। राज्य को अब तक जो वैधता प्राप्त थी वह नैतिक रूप से समाप्त हो चुकी थी क्योंकि उसने संरक्षण के माध्यम से तथा प्रजा के मानवाधिकारों का उल्लंघन करके शक्ति का पूरी तरह और सार्वजनिक रूप से दुरुपयोग किया था। तीन शासकों - युगाण्डा के ईदी अमीन, मध्य अफ्रीकी गणतंत्र के जीन बेडेल बोकस्सा तथा भूमध्यरेखीय गिनी के मैक्यिस नक्रूमा - को विशेष रूप से पतन के प्रतीक के रूप में माना जाता है।

किन्तु 1990 के दशक में अफ्रीकी नेतृत्व अपने निर्वाचकों की आवश्यकताओं तथा माँगों के प्रति कुछ संवेदनशील हो चला था। शीतयुद्ध की समाप्ति, अफ्रीकी एकता संगठन (OAU) की मान्यता, सरकार में जन भागीदारी की आवश्यकता के समर्थन की घोषणा द्वारा अनुमोदन एवं मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के वचन ने भी अफ्रीकी शासनों की बहु-दलीय लोकतंत्र एवं बहुलतावाद हेतु प्रतिबद्धता की घोषणा करने पर विवश कर दिया। इससे क्षीण होती हुई उनकी वैधता हल हुई। अगले कुछ वर्षों में ही, घरेलू दबाव के परिणामस्वरूप अनेक राज्यों ने बहुदलीय निर्वाचनों को स्वीकृति दे दी। चुनावों में हारने पर सत्ता छोड़ने वालों में बैनिन के मैथ्यू केरेकू तथा ज़ाम्बिया के राष्ट्रपति कैनेथ कौण्डा पहले दो नेता थे। अन्य राज्यों ने बाहरी दबाव के सामने समर्पण कर दिया; मलावी के राष्ट्रपति हेसिंग्स बॉडा को पहले तो बहु-दलीय चुनावों पर जनमत संग्रह के लिए राज़ी किया गया और जब वह हार गए तो उन्हें सत्ता से हट जाने के लिए कहा गया। फिर भी और लोग सत्ता से चिपके रहे। कोटे ड आइवरी के राष्ट्रपति हॉफौंड बोइग्नी विपक्ष के दबाव के कारण चुनावों के लिए तो राज़ी हो गए किन्तु बाद में उन्होंने विपक्ष को तैयारी के लिए समय नहीं दिया। अन्य फ्रेंकोफोन देशों में अनेक शासक बाहरी समर्थन के आधार पर विपक्ष द्वारा की गई चुनाव की माँग को रोकने में समर्थ रहे। उदाहरण के लिए, कैमरून में फ्रांस की मिलीभगत से शासकों ने चुनावी परिणामों में गोलमाल कर डाला क्योंकि उन्हें किसी एंग्लोफोन के राष्ट्रपति पद पर चुने जाने की आशंका सताने लगी थी। टोगो में, राष्ट्रपति योडेमा ने नवनिर्वाचित सरकार द्वारा राज्य को चलाए जाने के प्रयत्नों में अड़ंगा डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी क्योंकि उन्हें बाहरी शक्तियों का समर्थन प्राप्त था। इसी प्रकार, नाइजीरिया के राष्ट्रपति बाबंगिडा अत्यंत सशक्त घरेलू विरोध एवं सभी युक्तियों के बाद भी चुनावों में हार के बावजूद वर्षों तक

सत्तासीन बने रहे। तथापि, सत्ता में बने रहने का सबसे अधिक दृढ़ निश्चय एवं युक्ति-संपन्न प्रयत्न ज़ायरे में मोबुतु के द्वारा किया गया था। उन्होंने न केवल चुनावों को टालने में सफलता प्राप्त की वरन् विपक्ष द्वारा सत्ता छीनने के प्रयत्नों से भी वे बच निकले।

इस प्रकार यद्यपि बहुसंख्यक अफ्रीकी राज्यों ने चुनौतियाँ मिलने पर अपने शासन के वैधीकरण एवं स्थिरीकरण के साधनों एवं मार्गों को खोजने के प्रयत्न किए किन्तु कुछ ऐसे भी रहे जिन्होंने भीतरी और बाहरी दबावों के बावजूद अपनी पकड़ बनाए ही रखी। फिर भी, यह समझ लेना महत्वपूर्ण है कि राज्य के अधिकार और उसकी वैधता को मिली हुई समसामयिक चुनौतियों ने बहुसंख्यक राज्यों को उनकी आत्म-तुष्टि से धक्का मार कर जगाया ताकि वे भविष्य के लिए सुधरें और शासन की अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधित्वमय पद्धति को अपनाएँ। वैधता को मिली चुनौतियों ने ही कालान्तर में नीतिगत सुधारों संबंधी अनिवार्यताओं तथा राज्य संरचनाओं में परिवर्तन के प्रावधान प्रस्तुत किए। अंततः इन्हीं चुनौतियों के परिणामस्वरूप जड़ता का अंत हुआ तथा आर्थिक और राजनीतिक उदारीकरण की मोर्चाबंदी से अफ्रीका के विकास का नया मार्ग चुना जा सका।

4.4 सारांश

अतः 1960 के दशक में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अफ्रीका में राज्य ने विकास की एक लम्बी यात्रा पूरी की है। अपने घरेलू परिवेश में सुरक्षा कवच युक्त संप्रभु एवं स्थिर नवजात राष्ट्र-राज्य की स्थिति से चलकर, अफ्रीकी राज्य ने तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति प्रणालियों में व्युत्पन्न विरासत में मिले दृढ़ संरचनात्मक ढाँचे से यात्रा प्रारभ की थी और आज यह सजग नागरिक समाज से मिलने वाली राजनीतिक एवं आर्थिक चुनौतियों का निर्भीकतापूर्वक सामना करता है। किन्तु नए भूमण्डलीय तंत्र में वह आर्थिक रूप से आश्रित इकाई बन चुका है। विकास के मार्ग में गरीबी, सामाजिक-आर्थिक असमानताओं, आर्थिक ऋण-भार, संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों की शर्तों और वैधता के संकट जैसी सर्वनाशकारी विषमताओं से भरे संक्रमण-काल में धैर्यपूर्वक जन्मा हुआ अफ्रीकी राज्य परिशोधित एवं परिपक्व होकर नागरिक समाज की शक्ति की पहचान कराने वाली, शासन की प्रतिनिधि पद्धतीय प्रणाली की आवश्यकता संबंधी आज की चुनौतियाँ का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से समर्थ हो चुका है। चुनौती भारी है क्योंकि अफ्रीकी सरकारें अपने समुदायों तथा शक्ति के बाहरी स्रोतों के बीच के मध्यस्थों की अत्यधिक विशेषाधिकार वाली स्थिति से बाहर आ गई हैं। इन बाहरी शक्तियों के आर्थिक और वाणिज्यिक पोषण हेतु आवश्यक संसाधनों की पूर्ति ये अफ्रीकी सरकारें ही किया करती थीं।

कुल मिलाकर, आन्तरिक संकट एवं चुनौती तथा अफ्रीकी राज्य पद्धति के राजनीतिक तंत्र में गहरे प्रविष्ट भूमण्डलीकरण के व्यापक एवं गंभीर प्रतिघातों से भरे परिदृश्य ने न केवल अफ्रीकी राज्य के महत्व को कम किया है वरन उसके विघटन के मार्ग को भी प्रशस्त किया है। अफ्रीकी राज्यों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि अपनी पहली कमजोरियों पर विजय प्राप्त करें और लोकतंत्रीय शासन की ऐसी क्रियाविधियों को विकसित करें जो उनके कार्यकाल के नियमन और शक्ति-प्रयोग तथा राजनीतिक दायित्व की नीतियों के लिए स्वीकार्य हों। इससे अपनी जनता के बीच उनकी वैधता सुनिश्चित होगी। सरकारों को अपनी प्राथमिकताओं का पुनर्परीक्षण करना चाहिए और अपनी विकासात्मक कार्यनीतियों को नई शक्ल देनी चाहिए जिसमें विकास के कार्यों के लिए स्थानीय संसाधनों पर विश्वास किया जाए।

4.5 अभ्यास

1. आप अफ्रीकी राज्य की प्रकृति का विश्लेषण कैसे करेंगे? स्पष्ट लक्षणों का मूल्यांकन कीजिए।

2. राज्यत्व की वे कौन-सी समस्याएँ थीं जिनका सामना अफ्रीकी राज्यों को करना पड़ा।

3. अफ्रीका में राष्ट्रवाद तथा एकता को मिली प्रमुख चुनौतियों पर विचार व्यक्त कीजिए।

4. राजनीतिक विरोध को संबोधित करने में अफ्रीकी नेतृत्व की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

5. अफ्रीका में वैधता की चुनौती के रूप में राज्य-समाज-विकृतियों का विश्लेषण कीजिए।